

(समयसार, १८१ से १८३ गाथा) एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है... इसमें पूरा सिद्धान्त है। एक चीज़ की दूसरी चीज़ नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि पुण्य और पाप के विकार भी इसके-आत्मा के नहीं हैं। एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है... दूसरी अनन्त अन्य (चीज़ें) हैं, वह तो नहीं, परन्तु अन्दर में होते हुए क्रोध, मान, पुण्य, दया, दानादि के भाव, वह भी एक वस्तु की - यह वस्तु आत्मा की नहीं, आत्मा में वह नहीं। आहा! (एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती)... निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहाँ गया ?

**मुमुक्षु :** निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अर्थात् कुछ नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कुछ तो कहे, जानने के लिये है। वह निमित्त उसके रूप, नैमित्तिक अपनी पर्यायरूप परिणमे। एक-दूसरे को कोई सम्बन्ध है नहीं।

**क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं..** है? आत्मा के प्रदेश और शरीर, वाणी, कर्म के प्रदेश तो भिन्न है, परन्तु इसमें पुण्य-पाप के भाव हों, उनके प्रदेश यहाँ भिन्न गिनने में आये हैं। भिन्न गिनने में आये हैं। भिन्न अर्थात् हैं तो असंख्य प्रदेश में के, परन्तु उनका अंश जिसमें जितना विकार उत्पन्न हो, उतने क्षेत्र को भिन्न प्रदेश गिनने में आया है। समझ में आया? क्योंकि दूसरी, दूसरे की वस्तु नहीं अथवा सम्बन्ध नहीं। क्यों? कि दोनों के प्रदेश भिन्न होने से। आहाहा!

उस कान्तिलाल ने लिखा है, रत्नत्रय में, एक उसमें आता है न? पंच परमेष्ठी की स्तुति-भक्ति से विशुद्ध परिणाम होते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक... और विशुद्ध से फिर शुद्ध होते हैं, ऐसा आता है। विशुद्धि से शुद्ध होता है। ऐसा ढूँढ़कर डाले। यह तो जरा निमित्त से कथन किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। जहाँ पंच परमेष्ठी की बात की न, वहाँ पंच परमेष्ठी की स्तुति विशुद्ध है। विशुद्ध परन्तु इसे ऐसे विशुद्ध (अर्थात्) मानो कि शुभ को ही विशुद्ध कहते हैं, ऐसा। परन्तु विशुद्ध तो शुद्ध को भी कहते हैं, शुभ को भी कहते हैं। इस जगह भले विशुद्ध शुभ है, परन्तु दूसरी जगह शुद्ध को भी विशुद्ध कहते हैं और शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं और शुभभाव विशुद्ध, वह बन्ध का कारण है।

यहाँ तो इस शुभभाव के प्रदेश ही भिन्न (कहे हैं)। भाव भिन्न तो उसका क्षेत्र-स्थान भी भिन्न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा के शुभभाव इसके नहीं। वह वस्तु दूसरी, उसके प्रदेश ही दूसरे हैं और इसके प्रदेश दूसरे हैं। भाव दूसरा, इसलिए वस्तु दूसरी। दया, दान के परिणाम भी आत्मा की अपेक्षा से दूसरी वस्तु है और उसकी अपेक्षा से... क्यों? कि प्रदेश भिन्न हैं। **दोनों के प्रदेश भिन्न हैं, इसलिए उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है..** उन्हें-दो को एक सत्ता की उत्पत्ति नहीं है। राग के परिणाम, दया, दान आदि देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहार श्रद्धा के (परिणाम) और आत्मा, इन दो की एक सत्ता नहीं है। आहाहा! दो की सत्ता तो भिन्न, अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसा है।

वह है, इसलिए उसमें डाला है, आज कुछ आया है-रत्नत्रय। एक समाचार पत्र

निकालता है न! वह इसमें है न - मोक्षमार्गप्रकाशक में! वह खबर है, विशुद्धि (शब्द) दोनों जगह प्रयुक्त होता है। शुभभाव में भी प्रयुक्त होता है, शुद्ध में भी प्रयुक्त होता है। वह डाला है। अरिहन्त आदि के प्रति जो स्तवनादिरूप भाव होते हैं, वह कषाय की मन्दतापूर्वक होते हैं। इसलिए वे विशुद्ध परिणाम हैं। उन्हें विशुद्ध (कहा है)। देखो! इसमें है। विशुद्ध कहलाते हैं तथा समस्त कषाय भाव मिटाने का साधन है। निमित्त से कहते हैं। व्यवहार साधन कहीं कहा है न! इस अपेक्षा से ऐसा कहा। इसलिए वह शुद्धपरिणाम का कारण भी है। इतना है। अरे!

उसका क्षेत्र भिन्न, प्रदेश भिन्न, सत्ता भिन्न। किस जगह कहा हो, (वह समझना चाहिए)। यह तो व्यवहार साधन-साध्य (आता है)। निर्मल पर्याय का क्षेत्र भिन्न है, परन्तु यहाँ अभी उसका काम नहीं है। यहाँ तो मलिन परिणाम जो शुभ है, क्रोधादि... क्रोध कहेंगे, स्वभाव के प्रति विरुद्ध भाव, ऐसा जो क्रोध, मान, माया, लोभ। क्रोध, मान अर्थात् द्वेष और माया, लोभ अर्थात् राग। वह राग और द्वेष की सत्ता भिन्न है, उसके प्रदेश भिन्न हैं। वे आत्मा की वस्तु से वस्तु भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है।

(दोनों की सत्ताएँ भिन्न भिन्न हैं);.. आहाहा! चैतन्य भगवान् ज्ञायकस्वभाव और व्यवहाररत्नत्रय का राग, इन दोनों के प्रदेश भिन्न और सत्ता भिन्न। आहाहा! जगत को जँचना (कठिन पड़े।) और इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है,.. एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं होने से तब उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। है ही नहीं, ऐसा कहा है। राग आधार और निश्चयस्वभाव आधेय - समझ में आये, राग के आधार से निर्मल (स्वभाव) समझ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! निर्मल पर्याय है... उसमें नाशवान् उपयोग लिया है परन्तु अकेला शुद्ध उपयोग है, वह सदा नहीं रह सकता। इसलिए उसका शुद्धपरिणामन आधार लिया। नहीं तो उपयोग में उपयोग है। शुद्ध उपयोग में आत्मा है, परन्तु ऐसा कहने जाये तो अकेला शुद्ध उपयोग कितनी बार नहीं, परिणामन शुद्ध है और उपयोग राग में जाता है। इसलिए इसका शुद्धपरिणामन है, आत्मा का शुद्ध परिणामन है, उसमें आत्मा है। समझ में आया? उपयोग का अर्थ ऐसा हुआ। ज्ञानस्वरूप जाननक्रिया, वह जाननक्रिया उपयोग का अर्थ किया है। आहा! वह अत्यन्त शुद्ध उपयोग करे तो शुद्ध उपयोग सदा होता नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है, तब उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। सम्बन्ध भी नहीं, ऐसा कहा। सत्ता तो भिन्न है, परन्तु आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है, ऐसा। इसलिए भी है ही नहीं। ऐसा (कहा)। यह भी नहीं, ऐसा (कहना है)। वह तो प्रदेश भिन्न है, सत्ता भिन्न, परन्तु आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है। राग, व्यवहाररत्नत्रय का राग आधार और उसके कारण आत्मा ज्ञात हो, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात संवर अधिकार में स्पष्ट रखी है। इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप.. प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप में आधार-दृढ़पने रहनेरूप 'ही' एकान्त किया। आधाराधेयसम्बन्ध है। अर्थात् कि प्रत्येक वस्तु को अपने स्वरूप में ही रहनेरूप आधार है।

इसलिए ज्ञान जो कि.. ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान अर्थात् आत्मा। यह अपनी जाननक्रिया.. ऐसी भाषा ली है। वह उपयोग न लेकर यह (जाननक्रिया) ली है। जो शुद्धचैतन्यस्वरूप है, उसकी जो जानने की, श्रद्धा की, स्थिरता की, आनन्द की क्रिया।

टीका। वास्तव में.. अर्थात् निश्चय से। एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है.. अर्थात्? एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थात्? चैतन्यस्वरूप को और दया, दान, व्रत या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का व्यवहार का रत्नत्रय का राग, उस राग को और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! है? एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती).. कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्बन्ध अर्थात् निमित्त-निमित्त हुआ। यह तो कहते हैं। उसमें क्या, वह तो निमित्त वस्तु नहीं। वास्तव में तो वह ज्ञेय और यह, यह भी व्यवहार है। ज्ञान, ज्ञेय को जाने, यह व्यवहार है; ज्ञान, ज्ञान को जाने, यह निश्चय है। सूक्ष्म बात, सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो पाठ तो ऐसा है, उपयोग में उपयोग में नहीं, ऐसा नहीं कहा। उपयोग में उपयोग है। तब यहाँ उपयोग में उपयोग है, ऐसा यदि लेने जायें तो शुद्ध उपयोग में आत्मा है, तो ऐसा लेने जायें तो शुद्ध उपयोग तो सदा रहता नहीं। इसलिए शुद्ध उपयोग में, शुद्ध

उपयोग जो है, इसका अर्थ यह करेंगे, फिर जाननक्रिया अर्थ करेंगे, उपयोग अर्थ नहीं करेंगे। क्योंकि उपयोग है, वह शुद्ध उपयोग सदा नहीं रहता, तो फिर उसके आधार से ही हो तो जाननक्रिया परिणमन जो शुद्ध है, उसका आधार नहीं, ऐसा हो जाता है। है यह ? उपयोग भले बाहर में-रागादि में जाये, तथापि आत्मा की जाननक्रिया, परिणमन क्रिया, शुद्ध परिणमनक्रिया, वही इतना उपयोग है। उसमें आत्मा है। आहाहा! नहीं राग में, नहीं अजीव में, नहीं शरीर में, नहीं वास्तव में तो शुद्ध उपयोग में भी त्रिकाल वस्तु नहीं है। जाननक्रिया में वह वस्तु है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जाननक्रिया में निष्क्रिय वस्तु कैसे कहलाये ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जाननक्रिया, वह निर्मल परिणति है, उसके द्वारा जानने में आती है। जाननक्रिया का अर्थ यह कि स्वभाव का निर्मल परिणमन है, उसके द्वारा ज्ञात होती है। परिणमन है, वह आधार है; आत्मा, वह आधेय है। आहाहा! ऐसी शैली ली है।

(अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती) क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं.. आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग और भगवान आत्मा दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। हैं असंख्य प्रदेश में के, परन्तु असंख्य प्रदेश में जिस प्रदेश के अंश में राग उत्पन्न होता है, वह राग भाव और उसका क्षेत्र; भाव और उसका क्षेत्र इसके भाव और इस क्षेत्र से भिन्न हैं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** मन में कल्पना करनी या दोनों भिन्न हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञानस्वरूप यहाँ तो आत्मा लेना है।

**मुमुक्षु :** काल्पनिक रीति से भिन्न नहीं पड़ते।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भिन्न नहीं। आत्मा और ज्ञान दोनों एक ही यहाँ तो लिये हैं। राग भिन्न। ज्ञान शब्द से यहाँ आत्मा है। उपयोग कहा, उपयोग कहा न ? उपयोग में उपयोग है। उपयोग में उपयोग है, वह उपयोग है तो यह। आत्मा उपयोग में अर्थात् जाननक्रिया में उपयोग है अर्थात् आत्मा है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। दोनों को सम्बन्ध नहीं है, क्यों ? कारण देते हैं कि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। क्योंकि भाव भिन्न है तो भाव का क्षेत्र भी भिन्न है। ध्रुव और ध्रुव

का क्षेत्र, ध्रुवभाव और क्षेत्र उससे भिन्न है और उनसे (क्रोधादि से) यह भिन्न है। यहाँ तो विकार में लिया है, परन्तु निर्विकारी परिणति हो, उसके भी प्रदेश भिन्न हैं, क्योंकि दो भाव हुए न, एक ध्रुवभाव है और एक परिणतिभाव है। दो भाव हुए, इसलिए दो भाव के प्रदेश दोनों के भिन्न हैं। शुद्ध परिणति के प्रदेश भिन्न हैं। यहाँ तो अशुद्ध (परिणति की) बात की है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। वे कहे, दया पालो, व्रत करो और अपवास करो, लो! हो गया (धर्म) जाओ! अब इन बनियों को यह समझना। एक दूसरे को सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि दोनों के अंश—क्षेत्र, भाव भिन्न होने से। (इसलिए) उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है.. शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा और राग, दोनों की एक सत्ता की अनुपपत्ति है। दोनों की एक सत्ता ही नहीं है, दो की सत्ता भिन्न है। आहाहा!

यह तो अभी कहा, वह कान्तिलाल ईश्वर है न? मासिक निकालता है न, उसमें डाला है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले (आता) है कि भगवान की स्तुति से विशुद्ध परिणाम होते हैं, परन्तु विशुद्ध तो शुभ को भी कहा जाता है, शुद्ध को (भी कहा जाता है)। यहाँ शुभ को (विशुद्ध) कहते हैं। उसका अर्थ ऐसा नहीं कि शुभ है, इसलिए उसे विशुद्ध (परिणाम होते हैं)। अपेक्षा से विशुद्ध कहा है परन्तु तदुपरान्त मोक्षमार्गप्रकाशक में जरा स्वयं ऐसा लिया है कि विशुद्धि है, वह शुद्ध का कारण है। ऐसा लिया है। निमित्त से कथन है।

यहाँ कहते हैं विशुद्धि जो शुभभाव है, वह आत्मा में नहीं है। दोनों की सत्ता भिन्न है। भिन्न सत्ता, भिन्न सत्ता को क्या करे? आहाहा! ऐसा है। कठिन बात है कठिन। एक सत्ता की अनुपपत्ति है (अर्थात् दोनों की सत्ताएँ भिन्न भिन्न हैं);.. आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, उस भाव का भाव, उसे द्रव्य गिने तो उसके प्रदेश भी भिन्न हैं। जितने में से वह उठता है, उतने प्रदेश-क्षेत्र भिन्न है। उसे भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव लें तो काल उसका एक समयमात्र, क्षेत्र उस प्रदेश का अन्तिम अन्त, वस्तु स्वयं वह, भाव उसका वह विकारी। समझ में आया इसमें?

जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, उस राग के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न। आहाहा! और भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप के प्रदेश भिन्न। आहाहा! उन्हें एक सत्ता की प्राप्ति है ही नहीं। आहाहा! परन्तु वह मोक्षमार्गप्रकाशक में जरा लिखा है न! विशुद्धि का आठवें पृष्ठ

पर है। स्तवन से उसे विशुद्धि होती है। उसे मानो ऐसा कि शुभ को विशुद्ध कहा न! ऐसा। परन्तु उस शुभ को भी विशुद्ध कहा है और शुद्ध को भी विशुद्ध कहा है, दोनों है। शास्त्र में दोनों शब्द हैं। विशुद्ध अर्थात् उस कषाय की तीव्रता की अपेक्षा से उसे विशुद्धि कहा है। परन्तु है तो राग, कषाय और आत्मा की सत्ता दो भिन्न, दोनों के प्रदेश भिन्न, दो के भाव भिन्न। तदुपरान्त एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है, तब उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। आहाहा! राग आधार और निर्मल परिणति आधेय, उसके आश्रय से प्रगटे, ऐसा नहीं है। आहाहा! आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति (आधार और आत्मा आधेय, ऐसा नहीं है)।

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षपाहुड़ में कहते कि 'परदव्वादो दुग्ई'! 'परदव्वादो दुग्ई' तथा एक ओर ऐसा कहे कि यह विशुद्धि, वह शुद्धता का कारण है। शुभभाव, वह परद्रव्य के लक्ष्य से (होता है) परन्तु वह दुर्गति है, चैतन्यगति नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। चर्चा से कुछ पार नहीं पड़ता। भाव समझना चाहे तो समझ में आये, ऐसी बात है।

परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। क्या (कहा)? सत्ता भिन्न है, प्रदेश भिन्न है (और) यह भी नहीं, ऐसा; इसलिए 'भी' (शब्द) लेना पड़ा। समझ में आया? आहाहा! राग की क्रिया और आत्मा का स्वभाव, दोनों को कोई सम्बन्ध नहीं है, दोनों के प्रदेश भिन्न हैं, इसलिए दोनों की सत्ता इस कारण भिन्न है इसलिए; और इससे इनको-दोनों को आधार-आधेयसम्बन्ध भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, यह इनकार करते हैं। उसकी सत्ता भिन्न है, प्रदेश भिन्न है और दोनों को आधार-आधेयसम्बन्ध भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सम्प्रदाय से तो इस (बात का) मेल खाना मुश्किल है। कितने बोल स्पष्ट किये हैं! आहाहा!

चैतन्य भगवान् निर्मलानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द आदि अतीन्द्रिय गुण का धाम, वह आधेय है और उसका आधार, जो उसकी परिणति से ज्ञात होता है, इसलिए उसका आधार परिणति है। आहाहा! शुद्धपरिणति से आत्मा ज्ञात होता है। वह था, है भले हो। है भले, परन्तु है का हैपना इसे कब आवे? आहाहा! वह कारणपरमात्मा है अवश्य परन्तु वह है कब? कि पर्याय में कार्यपना हो, उसे वह कारणपरमात्मा है। इसलिए दूसरे को कारण

-परमात्मा है, ऐसा कहाँ आया ? आहाहा ! सबको कारणपरमात्मा है, यह तो बराबर है, परन्तु कारणपरमात्मा का जिसे भान हुआ नहीं, उसे कारणपरमात्मा की श्रद्धा कहाँ है ? आहाहा ! इसलिए भाई ने कहा था न ? त्रिभुवन वारिया ! ऐसा कि कारणपरमात्मा आप कहते हो तो कारण हो तो कार्य तो आना चाहिए ? (हमने कहा) परन्तु कारणपरमात्मा है, उसका अस्तित्व है—ऐसा जिसे प्रतीति में आया, उसे है या न हो उसे है ? और जिसे प्रतीति में आया, उसे समकित का कार्य आया ? समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा है । मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई !

एक-दूसरे के साथ **आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं**। वापिस 'ही' (लिखकर) एकान्त किया है । कथंचित् आधार-आधेयसम्बन्ध और कथंचित् आधार-आधेयसम्बन्ध नहीं, कथंचित् दोनों की सत्ता एक है और (कथंचित्) दोनों की सत्ता भिन्न है, ऐसा नहीं । आहाहा ! सम्यक् एकान्त नय का विषय सिद्ध किया है । आहाहा ! **इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में.. अपने स्वरूप में (कहा है) । प्रतिष्ठारूप (दृढ़तापूर्वक रहनेरूप) ही आधाराधेयसम्बन्ध है**। यह तो पहले सिद्धान्त किया । अब आत्मा पर घटित करते हैं ।

**इसलिए ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. आहाहा !** सिद्धान्त यहाँ है । उपयोग में उपयोग है, वह यहाँ (है) । पहले तो सिद्धान्त सिद्ध किया । आहाहा ! जो आत्मा, उसकी जो जाननक्रिया, जो परिणमन द्वारा आत्मा ज्ञात हुआ... आहाहा ! जिस परिणमन द्वारा आत्मा ज्ञेय जानने में आया, ज्ञेय हुआ, उस जाननक्रिया के आधार से वह ज्ञात हुआ । आहाहा ! क्योंकि कार्य हो, तब कारण कहलाये न ? इसी प्रकार यहाँ जब कार्य-जाननक्रिया हुई तो उससे आत्मा ज्ञात हुआ कि यह आत्मा है ।

वैसे द्रव्य के आश्रय से गुण और पर्याय रहते हैं । वह तो एक वस्तु की सिद्धि करनी है । द्रव्य के आश्रय से गुण और पर्याय है । बस ! 'द्रव्याश्रया गुणा' तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है । द्रव्य के आश्रय से गुण (रहे हुए हैं), यह तत्त्वार्थसूत्र का (सूत्र है) । आहाहा ! उसमें भी-श्वेताम्बर में अट्टाईसवें अध्ययन में भी है 'द्रव्याश्रया गुणो, एक द्रव्यसिया गुणा' वहाँ यह दूसरी बात है ।

यहाँ कहते हैं, उसके आश्रय से जो कहा था, वह तो वस्तुसिद्ध करने को (कहा था), परन्तु अकेली वस्तुस्थिति जिसे ख्याल में, अनुभव में न आवे उसे क्या ? कहते हैं ।



आहाहा! जिसे ख्याल में आवे, ज्ञान के परिणमन में, श्रद्धा के परिणमन में, शान्ति के परिणमन में अर्थात् स्वरूपाचरण स्थिरता इत्यादि परिणमन में ख्याल आवे कि यह आत्मा है, इसलिए जाननक्रिया, ऐसा अपना स्वरूप। वह जाननक्रिया इसका स्वरूप है। रागादि इसका स्वरूप नहीं है। जानना, जानना-देखना, ऐसा परिणमन वह तो इसका स्वरूप (परिणमन) है।

उस जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. आहाहा! उस अपने स्वरूप में आत्मा-ज्ञान रहा है, ऐसा कहना है न? ज्ञान अपने स्वरूप में रहा है। स्वरूप अर्थात्? ज्ञान ऐसा जो अपना आत्मा, उसे जाननक्रियारूपी जो अपना स्वरूप, उसमें वह रहा है; इसलिए उसमें वह ज्ञात होता है। ऐसी बात है। समझ में आया इसमें?

ज्ञान... अर्थात् आत्मा जो कि जाननक्रियारूप.. वह अपना स्वरूप है। आहाहा! रागादि इसका स्वरूप नहीं था। जो जाननक्रिया, आत्मा जो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी जो वर्तमान जाननक्रिया, श्रद्धाक्रिया, शान्ति की क्रिया, आनन्द की (क्रिया), उस जाननक्रिया में सब गुणों की पर्याय आ गयी। आहाहा! समझ में आया? जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. दोनों वस्तुएँ भिन्न की हैं। ज्ञान अर्थात् ही आधेय और जाननक्रिया, वह आधार। उस जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में रहा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? पुस्तक है न सामने? इसमें लोहे में-बोहे में कहीं वहाँ हाथ आवे, ऐसा नहीं है। पैसा आवे, वह भी उसकी पर्याय का काल (होवे तो आवे)। आहाहा!

यहाँ तो पहले ऐसा कहा, प्रवचनसार में तो ऐसा आ गया कि द्रव्य अपनी पर्याय को पहुँचता है। द्रव्य अपनी पर्याय को पहुँचता है, प्राप्त करता है, पाता है और पर्याय द्रव्य-गुणों से उत्पन्न होती है। समझ में आया? पर्याय, द्रव्य-गुण से उत्पन्न होती है और पर्याय को द्रव्य प्राप्त करता है। फिर विकार या अविकार दोनों, हों! यहाँ निर्विकारी (पर्याय की) बात नहीं है। द्रव्य जो है, वह अपनी जो परिणति है या पर्याय है, विकारी या अविकारी। द्रव्य है वह स्वयं मिथ्यात्व को पाता है, वह अपनी क्रिया / पर्याय है। ऐसा है। यह तो अपने बहुत बोल आ गये। १८ और १९वीं (गाथा) उसके अवसर में होनेवाला मिथ्यात्वभाव, उसे द्रव्य पहुँचता है, द्रव्य प्राप्त करता है, द्रव्य प्राप्त करता है। उसे द्रव्य प्राप्त करता है। आहाहा! आहाहा! दूसरी कोई चीज़ नहीं पाती, इतना वहाँ सिद्ध करना है।

यहाँ दूसरी बात सिद्ध करनी है। आहाहा! यहाँ तो वस्तु है परन्तु उस वस्तु का जहाँ अन्दर भान करते हैं, उसकी सन्मुखता होती है, तब जो ज्ञान और श्रद्धा का परिणमन हुआ, उसके स्वरूप के आधार से वह चीज़ है। क्योंकि उसके स्वरूप के आधार से वह ज्ञात हुआ है। इतना अब याद कब रखना? कहो, त्रम्बकभाई! इसे मुम्बई का सम्हालना या कांप का सम्हालना या यह (समझना)? क्या करना। आहाहा! उल्लासचन्दजी! यह अलग प्रकार का उल्लास है। आहाहा! (श्रोता—मुम्बई का और लोहे का दोनों का सम्हालना?)

कहते हैं, प्रभु! एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है। यह रागादि और पर आदि की अपेक्षा। दोनों की सत्ता भिन्न, यह रागादि और पर की अपेक्षा। दोनों का आधार-आधेय नहीं, यह रागादि और पर की अपेक्षा। यहाँ आधार-आधेय है। आहाहा! वह वस्तु तो वस्तु है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, उस 'है' का यहाँ परिणमन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि परिणमन हुआ, उस परिणमन के आधार से 'यह है', यह है अंश। अंश का परिणमन हुआ, उस अंश में 'यह अंशी इतना पूरा है' ऐसा उसके आधार से ज्ञात हुआ। इसलिए उसे आधार (कहा), वस्तु तो आधेय (कहा)। आहाहा! कहो, मीठालालजी! ऐसी चीज़ है। लोगों को कठिन पड़े परन्तु क्या हो?

एक ओर ऐसा कहे कि प्रवचनसार ऐसा पुकारता है (कि) द्रव्य पर्याय को पहुँचता है। विकारी या अविकारी, हों! वहाँ तो द्रव्य, गुण और पर्याय सिद्ध करना है, इतना। यहाँ तो संवर सिद्ध करना है। संवर कब होता है? चैतन्यमूर्ति शुद्ध है, उसका आश्रय लेकर और शुद्ध परिणमन जो होता है, तब उस परिणमन में यह चीज़ ज्ञात हुई, इसलिए परिणमन, वह आधार है; आत्मा, वह आधेय है। आहाहा! इतना सब बदलना कितना! साफ है, ऐसी स्पष्ट (बात है)। आहाहा!

जिसे राग और कर्म का सम्बन्ध ही नहीं। निमित्त-निमित्त वह कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध, वह भी व्यवहार है। आहाहा! आहाहा! उसमें होनेवाली शुद्ध परिणति, शुद्ध की दृष्टि से, लक्ष्य से (होती उस) परिणति में उसे ज्ञात हुआ कि 'यह द्रव्य है।' परिपूर्ण भगवान परिपूर्ण वस्तु, भले उस परिणति में वह द्रव्य आया नहीं, परन्तु परिणति में उस द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, उतना ज्ञान और प्रतीति हो गयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह सब सिर फिर जाये ऐसा है। आहाहा!

**जाननक्रियारूप अपने स्वरूप..** देखा यह ? उसका परिणमन है और वह अपना स्वरूप है। चैतन्य भगवान ध्रुव है, उसका जो परिणमन है, वह अपना स्वरूप है। आहाहा! एक जगह ऐसा कहे कि पर्यायस्वरूप में द्रव्य नहीं आता और द्रव्यस्वरूप में पर्याय नहीं आती। यह बात तो ऐसी ही है। यहाँ भी ऐसा कहा, पर्यायस्वरूप है, उसमें द्रव्य ज्ञात हुआ, द्रव्य उसमें आया नहीं परन्तु जितना जैसा द्रव्य है, जितनी सामर्थ्यवाला है, अनन्त गुण के पुरुषार्थ के, एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है, ज्ञान में अनन्त पुरुषार्थ का रूप है, अनन्त आनन्द का रूप है, अनन्त अकर्ता, अकारण का रूप है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का जो सामर्थ्य, ऐसा जो तत्त्व, जो जाननक्रिया के उपयोग में (आया), जाननक्रिया ली। उपयोग में उपयोग है, उसमें उपयोग में (अर्थात्) उसे यहाँ जाननक्रिया ली है। आहाहा! समझ में आया ? है न सामने ? पुस्तक है या नहीं ?

**जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है..** आहा! क्यों ? (कि) जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,.. आहाहा! आत्मा चैतन्यस्वरूप पूर्ण आनन्द आदि, उसका जानना हुआ, श्रद्धा हुआ, स्थिरता हुई, अनन्त गुणांश शक्ति में जो थे, वे व्यक्तरूप हुए, सब अंश (व्यक्तरूप हुए), उस परिणमन के आधार से ज्ञात हुआ कि यह (आत्मा) है। आनन्द के आधार से ज्ञात हुआ कि पूर्ण आनन्द है, ज्ञान की व्यक्तता का अंश पूर्ण ज्ञान, (को बतलाता है), शान्ति के आश्रय से पूर्ण शान्ति (ज्ञात हुई), पुरुषार्थ के आश्रय से पूर्ण (पुरुषार्थ) ज्ञात हुआ, ऐसे वह प्रगट जो पर्याय (हुई), उसमें जो अंश आये, उन अंशों द्वारा वह ज्ञात हुआ; इसलिए उसे—अंश को आधार कहा जाता है और अंशी को आधेय कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

**जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से, ज्ञान में ही है;...** वह आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ, उसकी जो जानने की, देखने की श्रद्धा की पर्याय हुई, वह उसका स्वरूप है और इसलिए वह ज्ञान की क्रिया, श्रद्धा की क्रिया, शान्ति की क्रिया, वह ज्ञान से अभिन्न है, आत्मा के स्वभाव से वह पर्याय अभिन्न है। आहाहा! अभिन्नत्व होने से, ज्ञान में ही है;..

**मुमुक्षु :** पर्याय में द्रव्य आवे ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस पर्याय में द्रव्य आया नहीं, परन्तु वह इस सन्मुख हो गया, इसलिए अभिन्न है, ऐसा (कहना है)। बाकी पर्याय, पर्याय है और द्रव्य, द्रव्य है। यह अभी नहीं लेना है। अभिन्नता का अर्थ अभेद हो गया। राग है भिन्न है, इस प्रकार से यह अभिन्न है, ऐसा।

**मुमुक्षु :** द्रव्य को और पर्याय को अभिन्न कहना, वह किस नय का कथन है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी निश्चयनय का कथन है। ऐसी बात है। यह तो १९वीं बार वंचता है न! इसमें मौके से तुम आये हो। रतिभाई नहीं आये? मुम्बई होंगे, ठीक! आहाहा!

**मुमुक्षु :** ज्ञान और आत्मा के प्रदेश अभिन्न होने से अभिन्न कहा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रदेश तो भिन्न वह नहीं। वस्तु वह की वह, एक ही सत्ता है। उसमें स्वरूप में वस्तु रही है। स्वरूप जो जाननक्रिया है, उसमें यह वस्तु रही है, इसलिए वह वस्तु का स्वरूप है, वह स्वरूप होने के कारण वस्तु अभिन्न है, ऐसा। पकड़ में आये उतना पकड़ो, बापू! यह तो (भण्डार है)।

**मुमुक्षु :** पर्याय के प्रदेश भिन्न हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी भिन्न नहीं (कहना)। अभी तो विकारी पर्याय के प्रदेश भिन्न कहना है, पश्चात् निर्विकारी पर्याय के प्रदेश भिन्न; अभी नहीं। यह बात तो कल हो गयी थी, नहीं? कि भाई! विकारी पर्याय मिट गयी, फिर निर्मल पर्याय मिल गयी, निर्मल के साथ। इसलिए वह पर्याय मिल गयी निर्मल, परन्तु फिर भी उसके प्रदेश तो, पर्याय के अंश भिन्न हैं। जो त्रिकाली प्रदेश हैं, और एक समय के प्रदेश हैं, वे भिन्न हैं। अभी यहाँ तो मात्र पर से भिन्न करना है। आहाहा! ऐसा है।

**ज्ञाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,..** अर्थात् जानने की जो परिणति की क्रिया है, उससे ज्ञान अर्थात् आत्मा अभिन्नत्व होने से, ज्ञान में ही है;.. ऐसा। यह आत्मा आत्मा में ही है। जो आत्मा का परिणमन कहा, उसे आत्मा कहा, जाननक्रिया को आत्मा कहा। इसलिए आत्मा, आत्मा में हैं। वह आत्मा अपने स्वरूप में है। वह स्वरूप जाननक्रिया ऐसा स्वरूप है, इसलिए आत्मा उसमें है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप है।

ज्ञाननक्रिया है, वह पर्याय है। उस पर्याय के आधार से आत्मा है। उस पर्याय के

आधार से ज्ञात होता है, इसलिए उसे आधार कह है। आहाहा! जाननक्रिया, वह उत्पन्न क्रिया है, उत्पाद है, उत्पन्न है। उस उत्पन्न क्रिया के आधार से आत्मा ज्ञात होता है; इसलिए इस आत्मा का वह स्वरूप है। इसलिए उस स्वरूप के आधार से वह आत्मा है, इसलिए स्वरूप और आत्मा, दोनों अभिन्न हैं। यह अपेक्षा है। आहाहा! इसमें कितने पहलू (समझना)? नये लोगों को (कठिन लगे), बापू! वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक है! वीतरागमार्ग के अतिरिक्त किसी धर्म में, किसी में यह सत्य बातें हैं ही नहीं। सबने कल्पित किया है। श्वेताम्बर धर्म में यह बात नहीं न! आहा! क्या कहें, परन्तु लोगों को कठोर पड़ता है। श्वेताम्बर धर्म और स्थानकवासी में जैनपने की शैली ही नहीं है। आहाहा! आहाहा!

कहते हैं राग और आत्मा की सत्ता दोनों भिन्न हैं परन्तु राग को जाननेवाला और अपने को जाननेवाला, ऐसी जो जानने की क्रिया, ऐसा जानने का जो उत्पाद परिणमन, उसको आधार (कहा जाता है) और आत्मा आधेय है। आहाहा!

**मुमुक्षु** : संवर की बात तो कठिन है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : संवर की बात तो बहुत सादी भाषा में—अत्यन्त सादी भाषा में मर्म खोला है। बापू! संवर अर्थात् क्या? आहाहा! आस्रवरहित संवर की उत्पत्ति है। उस संवर की उत्पत्ति (होना), वह जाननक्रिया है। वह आत्मा की जानन श्रद्धा, वह क्रिया है। वह क्रिया आत्मा का स्वरूप है और आत्मा का स्वरूप होने से उसके आधार से आत्मा रहा है। आहाहा! उसे जाननेवाली उत्पन्न पर्याय यदि न हो तो वह किसके आधार से ज्ञात हो? ऐई! राग (के) आधार से तो ज्ञात होता नहीं, तो पर्याय ही उत्पन्न न हो, प्रगट (न हो) तो यह त्रिकाल है, उसे जाना किसने? आहाहा! मूल में बड़ा अन्तर है। आहाहा!

जाननस्वरूप ही उसका है, ऐसा कहते हैं। यह रागादि उसका स्वरूप नहीं, इसलिए उसकी सत्ता भिन्न, प्रदेश भिन्न, आधार-आधेय भिन्न.. आहाहा! और जाननक्रिया और आत्मा, दोनों की सत्ता एक, दोनों में आधार-आधेय एक, जानन (क्रिया) आधार और वस्तु आधेय। दोनों को अन्दर सम्बन्ध अवश्य। उसके आधार से रहे और आधेय उसमें रहे, ऐसा सम्बन्ध है। आहाहा!

यह जानन जो शुद्ध उपयोग; शुद्ध उपयोग अर्थात् परिणमन। शुद्ध उपयोग पाठ में

लिया है, परन्तु अर्थ में जाननक्रिया ली है। कारण है कि वह उपयोग जो है, शुद्ध उपयोग में यदि आत्मा कहो तो शुद्ध उपयोग सदा नहीं रहता। कोई विकल्प में रहे, परन्तु शुद्ध का परिणमन सदा रहता है। चन्दुभाई! समझ में आया? शुद्ध का परिणमन, आहाहा! पर्याय की प्रगट सदा शुद्ध की कायम रहती है। उपयोग कदाचित् न रहे; इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! उपयोग को 'जाननक्रिया' शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! यह टीका कहलाये, ऐसी! आहाहा! सन्तों-दिगम्बर मुनियों (ने) गजब काम किया है! आहाहा!

लोगों को अभ्यास नहीं (और) प्रवृत्ति के कारण निवृत्ति नहीं। आहाहा! प्रवृत्ति, प्रवृत्ति के घर रही। इसकी सत्ता में वह प्रवृत्ति है नहीं। आहाहा! इसकी सत्ता में तो शुद्धपरिणमन है। आहाहा! राग भी नहीं तो पर शरीर, वाणी, मन और धन्धे की क्रिया, वह तो कहाँ है इसमें? आहाहा! समझ में आया?

**जाननक्रिया का ज्ञान से..** जाननक्रिया अर्थात् परिणमन—शुद्धपरिणमन। उसका ज्ञान से.. अर्थात् आत्मा से। **अभिन्नत्व होने से..** जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नपना होने से जाननक्रिया ज्ञान में ही है;.. आहाहा! उससे भिन्न नहीं, ऐसा कहते हैं। है? आहाहा! **जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से..** जाननक्रिया ज्ञान में ही है;.. आत्मा में ही है। वह निर्मल पर्याय है, वह आत्मा में ही है, ऐसा कहते हैं। वह आत्मा है। आहाहा!

अब, यह सिद्ध करके अब विरुद्ध सिद्ध करते हैं। यह अविरुद्ध सिद्ध किया। जाननक्रिया स्वरूप प्रतिष्ठित उसमें आत्मा रहा हुआ है। जाननक्रियास्वरूप, उसके आधार से प्रतिष्ठित अर्थात् उसके आधार से रहा है। क्योंकि वह आत्मा है। जाननक्रिया का संवरभाव, वह आत्मा है। आहाहा! एक ओर शुद्धभाव अधिकार नियमसार (में ऐसा कहे कि) संवर, निर्जरा और केवलज्ञान बहिर्तत्त्व है। किस अपेक्षा से? सभी तत्त्व (बहिर्तत्त्व है)। संवर, निर्जरा और सब बहिर्तत्त्व है। अन्तःतत्त्व तो एक त्रिकाली आनन्द का नाथ है परन्तु उसे जाननेवाले बिना, 'है'—ऐसा जाना किसने? ऐसा कहते हैं। उसे ज्ञेय बनाये बिना, यह ज्ञेय है, ऐसा जाना किसने? आहाहा!

महापुरुष कोई करोड़पति, अरबोंपति मिलने आया, परन्तु उसके सामने देखा नहीं और लड़के के साथ में आधे घण्टे खेल में रह गया तो वह उठकर चला गया। इसलिए

इसे तो मिला ही नहीं। इसी प्रकार पूरी चीज़ प्रभु महा आत्मा पड़ी है, महात्मा—महा पुरुष, वह समीप में पड़ी है परन्तु उसके सामने देखे बिना (खबर कैसे पड़े) ? आहाहा!

**मुमुक्षु :** वह चला नहीं जाता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो वहाँ का वहाँ (है परन्तु) इसकी दृष्टि में से चला गया न! वह चला गया। अनन्त काल से चला गया। आहाहा! इसकी सत्ता का अस्तित्व जैसा और जितना है, उतना उसके सन्मुख होकर जाना नहीं तो उसे तो यह सत्ता चली गयी है। आहाहा! ऐसा है। अरे! धन्य भाग्य! यह चीज़ कहाँ से कान में पड़े!! यह कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! वस्तु के स्वरूप की यह सब टीका है। आहाहा! यह (कहकर) अब विरुद्ध का लेते हैं।

**क्रोधादिक जो कि क्रोधादिक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. आहाहा!** क्रोधादि है, उनका परिणमन जो है, उसके आधार से यह क्रोध है। **क्रोधादिक जो कि क्रोधादिक्रिया..** (अर्थात्) परिणमन। आहा! क्रोध वस्तु है, वह वस्तु गिनी और फिर उसका परिणमन गिना। उस परिणमन के आधार से क्रोध है। आहाहा! आज सूक्ष्म आया, परन्तु अधिकार ऐसा है, वहाँ (क्या हो) ? आहाहा!

क्रोध शब्द से द्वेष और आदि शब्द से राग। राग में लोभ और माया आवे। यह लोभ की-इच्छा की वृत्ति उत्पन्न हुई... आहाहा! यह इच्छा की परिणति, वह क्रोध की क्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। यह इच्छा की परिणति, जो क्रोध, मान, माया, लोभ है, उनकी परिणति है, उसके आधार से वह है। उस परिणति के आधार से वह क्रोध है; आत्मा के आधार से नहीं। आहाहा!

क्रोधादि है न? क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय-वासना, रागादि, वह जो क्रोधादि क्रिया, उसका परिणमन, वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। उसका स्वरूप—परिणमनस्वरूप उसका है। विकारीभाव का परिणमन, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! उस स्वरूप में प्रतिष्ठित है। उसके स्वरूप के आधार से विकार है, आत्मा के आधार से नहीं, आत्मा की पर्याय के आधार से नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

**मुमुक्षु :** क्रोधादि का आधार मोहकर्म गिनने में आवे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्म-फर्म यहाँ नहीं। यहाँ तो अन्दर की बात है। कर्म-फर्म,

नोकर्म तो बाहर रहे। वह आयेगा। यह मिलान के बाद आयेगा। आठ कर्म और नोकर्म बाद में (आयेगा)। आठ कर्म आयेंगे परन्तु यह तो पहले अन्दर का निश्चित करे, पश्चात् वह है। वह तो बाहर का (तत्त्व है), भिन्न है परन्तु वे भिन्न भासित नहीं होते; इसलिए उन्हें भिन्न बताकर फिर कहेंगे, इनकी तरह सब ले लेना। कर्म, शरीर, अमुक-अमुक... सब ले लेना। आहाहा!

मूल प्राण तो साधारण शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, ऐसी धारणा तो बहुत बार हो गयी है। ग्यारह अंग का जानपना (तो हो गया है) परन्तु यह भिन्न हुए बिना, वह भिन्न है—ऐसा यथार्थपना नहीं आता। आहाहा! वैसे तो ग्यारह अंग का जानपना नहीं किया? शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, इतना तो आया न? राग भिन्न है, ऐसा भी ख्याल में—धारणा में आया था, परन्तु भाव में नहीं आया था। आहाहा!

रागरहित स्वभाव की दृष्टि करके जो परिणमन होना (चाहिए), वह नहीं था। इसलिए इसे कहते हैं कि परिणमन के आधार से वह ज्ञात हुआ और क्रोध, और विकार है, वह परिणति के आधार से विकार है, वह आत्मा के आधार से विकार है ही नहीं।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)